प्रधानमंत्री की दौड़ और राहुल गांधी

पिछले दिनों राहुल गांधी के एक वाक्य ने सारा राजनैतिक परिदृश्य ही बदल कर रख दिया। लम्बे समय से अटकलें थीं कि अगले लोकसभा चुनाव का मुख्य मुकाबला राहुल गांधी और नरेन्द्र मोदी के बीच ही होगा जिसमें नरेन्द्रमोदी निश्चित रूप से भारी पड़ते। किन्तु एकाएक राहुल गांधी ने प्रधानमंत्री की दौड़ से स्वयं को बाहर करके नरेन्द्र मोदी के लिये एक गंभीर संकट खड़ा कर दिया। अब यह स्पष्ट दिखने लगा है कि मुख्य मुकाबला कांग्रेस पार्टी और भाजपा के बीच ही होगा जिसमें कांग्रेस भाजपा की अपेक्षा कई गुना अधिक भारी पड़ सकती है।

मनमोहन सिंह स्वतंत्रता के बाद सबसे अधिक योग्य प्रधानमंत्री सिद्ध हुए हैं। बंगाल ने उन्हें हमेशा ही परेशान किया चाहे वह पिछला कार्यकाल हो या दूसरा। पिछले कार्यकाल में साम्यवादियों ने मनमोहन सिंह की अर्थनीति को पांच वर्ष तक जकड़ कर रखा तो इस कार्यकाल में साम्यवादियों का स्थान ममता बनर्जी ने ले लिया। साम्यवादी तो कभी कभी ही परेशान किया करते थे किन्तु ममता बनर्जी ने तो शालीनता की सारी सीमाएँ ही तोड़ कर रख दीं। बंगाल के ही तीसरे सपूत वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी ने भी आर्थिक मामलों में मनमोहन सिंह की कभी नहीं सुनी। बड़ी मुश्किल से मनमोहन सिंह की अर्थ व्यवस्था पर से बंगाल की साढ़े साती खतम हुई है। साढ़े सात तो वैसे ही चले गये। बीच का एक वर्ष तैयारी में लग गया। अब चिदम्बरम ने आकर सम्हाला है। लगता है कि छः माह में ही भारत की अर्थ व्यवस्था पटरी पर दौड़ना शुरू कर देगी। तब पता चलेगा कि मनमोहन सिंह के सामने कौन खड़ा होता है।

शुरू से ही स्पष्ट दिख रहा था कि राहुल गांधी राजनैतिक रूप से पूरी तरह असफल हैं। उनमें एक भी ऐसा दुर्गुण नहीं जो राजनेता में आवश्यक हैं। राहुल गांधी की कभी राजनीति में रूचि भी नहीं रही। सोनिया गांधी राहुल को लगातार सत्ता की राजनीति की दिशा में प्रेरित करती थीं और इस कार्य के लिये पिछले दो ढाई वर्ष तक मनमोहन सिंह जी को अस्थिर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राहुल भी उनके दबाव में राजनीति सीखने का प्रयास करते रहे किन्तु इस तरह के प्रयास व्यक्ति के गुणों में मौलिक बदलाव नहीं कर सकते। किसी तरह घेरघार कर उनसे हां भी कराई गई तो जयपुर चिन्तन शिविर में राहुल ने मां बेटे के बीच रोने की जो बात बताई यह किसी भी रूप में नाटक न होकर सच्ची घटना थी। पारंभ में तो राहुल के कदमों से यह निश्चित नहीं लगता था कि राहुल एक मंजे हुए खिलाड़ी के समान नाटक कर रहे हैं या यथार्थ में वे दुविधा में हैं। अब स्पष्ट हुआ कि वे दुविधा में थे और अन्त में उन्होंने सत्ता की राजनीति से दूर रहने की घोषणा कर दी। इतना ही नहीं, राहुल ने तो विवाह करने में भी अपनी अरूचि बताकर सबको आश्चर्य चकित ही कर दिया।

राहुल गांधी के पूर्वजों में दो उल्लेखनीय रहे (1) फिरोज गांधी (2) इन्दिरा गांधी। फिरोज गांधी में गांधी की छाप थी तो इन्दिरा गांधी में नेहरू की। राजीव गांधी में भी फिरोज गांधी की छाप थी तो संजय गांधी में इन्दिरा गांधी की। राहुल गांधी पर नेहरू, इन्दिरा, संजय गांधी की कोई छाप कभी नहीं पड़ी। यदि हम सोनिया गांधी की भी समीक्षा करें तो पुत्रमोह में मनमोहन सिंह को अस्थिर करने के अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत पारिवारिक या राजनैतिक जीवन ऐसी ही समकक्ष राजनैतिक महिलाओं से कमजोर तो नहीं रहा बल्कि कुछ न कुछ अच्छा ही रहा है। मैं तो उनका पूर्व में भी प्रशंसक रहा और आज भी हूँ। जहॉ छोटे–छोटे पदों के लिये षड़यंत्र तक आम बात है वहॉ प्रधानमंत्री पद शालीनता से ठुकराना उनका ऐतिहासिक उदाहरण ही माना जायेगा। राजीव गांधी एक मात्र प्रधानमंत्री हुए जिन्होंने ग्राम सभाओं को संवैधानिक मान्यता दी। यदि राजीव सोनिया का पुत्र इन दोनों से आगे बढ़कर कोई निर्णय करता है तो वह प्रशंसा योग्य तो है ही। स्वतंत्रता के बाद भारत में जयप्रकाश तथा अन्ना हजारे के अतिरिक्त किसी ने गांधी मार्ग को महत्व नहीं दिया जबकि प्रधानमंत्री बनने के लिये लोग लाइन में लगे हैं। राहुल ने यदि गांधी मार्ग चुना है तो यह भारत ही नहीं, पूरे विश्व के लिये एक उपलब्धि होगी।

राहुल गांधी ने कांग्रेस पार्टी में भी कछ नीतिगत बदलाव करने की पहल की है। इनके बदलाव कांग्रेस पार्टी को मजबूत करेंगे या कमजोर यह अभी से पता नहीं। कुछ नीतियां देश और समाज के हित में होते हुए भी पार्टी के कार्यकर्ताओं को परेशान कर सकती हैं। किन्तु इस डर से नये प्रयोग तो नहीं रोके जा सकते। राहुल गांधी को ऐसे नये प्रयोगों के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।

राहुल गांधी ने जिन भी प्रदेशों में राजनैतिक मेहनत की वहॉ उन्हें सफलता नहीं मिली यह सच है। भविष्य में भी यह संभव है। यदि महात्मा गांधी भारत के प्रधानमंत्री होते तो और जल्दी असफल होते। ऐसा ही जयप्रकाश का भी हाल था। यदि राहुल गांधी भी प्रधानमंत्री बन जायें मो देश को लाभ की जगह पर हानि ही होने की ज्यादा संभावना है। इसलिये राहुल गांधी ने जो मार्ग पकड़ा है वह बिल्कुल ही उचित है।

प्रश्न उठता है कि अब नरेन्द्र मोदी का क्या होगा? मरे विचार में नरेन्द्र मोदी किसी भी रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था के टानिक न होकर दवा के रूप में हैं। यदि देश की वर्तमान स्थिति नरेन्द्र मोदी के अतिरिक्त किसी अन्य से सम्हल सके तो मोदी का प्रयोग उचित नहीं। वैसे भी मनमोहन सिंह देश की सम्पूर्ण व्यवस्था को ठीक दिशा में बढ़ा रहे हैं। यदि मनमोहन सिंह और मोदी की तुलना करें तो मनमोहन सिंह की कथनी पर नागरिकों को मोदी की अपेक्षा कई गुना ज्यादा विश्वास है। जबकि मोदी की

क्षमता अधिक विश्वसनीय है। मनमोहन सिंह में ब्राम्हण तत्व प्रधान है तो मोदी में क्षत्रिय तत्व। मेरे विचार से तो ऐसा अवसर नहीं आया है कि इतना खतरा उठाने की पहल की जाये। यदि किसी तरह की फेर बदल भी होती है तो विकल्प के रूप में नीतिश कुमार हैं ही। अभी तो अरविन्द केजरीवाल का परिणाम देखना भी बाकी ही है। अभी मोदी का उपयोग करने के पूर्व पांच वर्ष आर प्रतीक्षा करने में कोई नुकसान नहीं है।

सन् सैंतालीस से ही पण्डित नेहरू प्रधानमंत्री के पद को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने की जो भूल करते रहे उसी का परिणाम है कि आज प्रधानमंत्री पद इतना ज्यादा महत्वपूर्ण बन गया है। इनके पूर्व के प्रधानमंत्रियों ने तो भरसक कोशिश की है कि राष्ट्रपति या न्यायालय भी उनका ही पिछलग्गू रहे। मनमोहन सोनिया की जोड़ी ने प्रधानमंत्री पद की महत्ता को घटाकर लोकतंत्र को मजबूत किया है। पार्टी अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री के बीच जैसा तालमेल रहा है उसका एक छोटा सा अंश भी आपको गुजरात सहित अन्य कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रयोग को आगे बढ़ाने की जरूरत है। मैं नहीं कह सकता कि राहुल गांधी इस परीक्षा में कितने सफल होंगे किन्तु प्रयोग करने में कोई हर्ज नहीं।

राहुल गांधी के इन्कार के बाद कांग्रेस पार्टी की एक चौकड़ी को बहुत धक्का लगा है। दिग्विजय सिंह, सलमान खुर्शीद सरीखे लोग तो चाहते थे कि राहुल सरीखा शरीफ नवजवान यदि प्रधानमंत्री बना तो वास्तविक शक्ति तो चौकड़ी के पास ही रहेगी। मनमोहन सिंह के पास तो किसी की दाल गलती नहीं। राहुल सीधा सादा लड़का है। जैसा चाहेंगे वैसा घुमा लेंगे। राहुल के इन्कार के बाद भी चौकड़ी अभी चुप नहीं रहेगी। राहुल के अतिरिक्त तो किसी अन्य पर ये दांव लगायेंगे नहीं और मनमोहन सिंह इन्हें फूटी आंख भी नहीं सुहाते। राहुल के इन्कार के बाद ये प्रयत्नशील हैं। मुझे पूरी उम्मीद है कि राहुल ऐसे लोगों की चापलूसी में नहीं फसेंगे। वैसे सोनिया जी ने भी राहुल की क्षमता , इच्छा, गुण–अवगुण का आकलन करके ही मनमोहन सिंह को हरी झंडी दी है। अगले दो तीन माह मे स्थिति और स्पष्ट हो जायगी।

मेरा यह लेख आपको कांग्रेंस के पक्ष मे कुछ ज्यादा ही झुका हुआ दिखेगा भी और ह भी। पिछले दो तीन माह मे कांग्रेस पार्टी ने पांच ऐसे संकेत दिये जिन्होने मुझे इतना प्रभावित किया। भारत की राजनीति मे पांच समूह कुछ ज्यादा ही ब्लैकमेल कर रहे है। 1 आदिवासी हरिजन 2 महिला 3 मुसलमान 4 कश्मीर 5 मध्यवर्ग। स्पष्ट दिखता था कि पांचो समूहो के कुछ गिने चुने लोग ही सारे समूह के नाम पर ब्लैकमेल करते रहते है। कांगेंस पार्टी ने पांचो को एक एक करके उनकी सीमाएं बतानी शुरू कर दी है। आदिवासी हरिजन जिस तरह ब्लैक मेल कर रहे थे उनकी काट के लिये मुलायम सिंह जी की पीठ थपथपाई गई । महिलाओ ने भी कुछ अति ही कर दी थी। कृष्णा तीरथ तो कुछ ऐसा दिख रही थी कि वह जो कहेंगी वह स्वीकार करना सरकार की मजबूरी है। उन्होने अन्तिम दम तक जोर लगाया किन्तु उन्हे आंशिक रूप से _झुकने को मजबूर कर दिया गया। भारत के मुसलमानो विशेषकर कश्मीरियों को भी अफजल गुरू को फांसी देकर बता दिया गया कि एक सीमा भी बनी हुई है। भारत का मध्यम वर्ग पूरी अर्थ व्यवस्था को जकड कर रखना चाहता था। चार आठ आना डीजल बिजली का दाम बढते ही ऐसा तुफान उठता था कि रोल बैक की मजबूरी हो जाती। रेल बजट और आर्थिक सुधारो ने ऐसा कसके झापड दिया कि सारा भारत बंद ही बन्द हो गया। मुठी भर नेता समूहो के प्रतिनिधि बनकर लगातार ब्लैकमेल कर रहे थे।सरकार लोकहित की जगह लोकप्रियता के पीछे दौड रही थी । दो तीन माह से सरकार ने लोकप्रियता के स्थान पर लोकहित को महत्व देना शुरू किया है। मुझे लगता है कि लाकहित की दिशा मे बढते ही लोकप्रियता अपने आप पीछे पीछे चली आयगी। भाजपा अब भी लोकप्रिय मुद्दे उठा रही है। मुझे यह देखकर बेहद कष्ट हुआ कि दिल्ली मे कैश सब्सीडी योजना का विरोध करने के लिये भाजपा ने राशन डीलरो द्वारा जंतर मंतर पर प्रदर्शन करवाया । भाजपा का गंभीर पतन हो गया लगता है। फांसी की सजा खतम करने से जल्लाद बेरोजगार हो जायगे ऐसे तर्क भाजपा के लिये ठीक नही। सारी स्थिति के आकलन के बाद ही मैने यह लेख लिखा है। मेरा स्पष्ट मत है कि नये वातावरण मे भाजपा की अपेक्षा अन्य दल विशेष कर कांग्रेस भारी पडेगे।

प्रश्नोत्तर

1 मनोज दुबलिस ,मेरठ

विचार–बजट की परिभाषा आखिर क्या होगी ? इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सपनों की दुकान में जहर की बिक्रो। हर वर्ष लाखों करोंडों रुपया बित्त मंन्री के बजट या प्रधानमंन्री या राष्ट्रपति के भाषण के प्रसारण पर खर्च किया जाता है आखिर जनता इसे देख सुनकर या पढकर क्या कर लेगी और यदि जनता के रुचिकर हितकर कोई घोषणा या निर्णय न भी हो तो भी जनता के पास इसे बदलने का कोई अधिकार ही नही तो फिर इन सबमे धन बर्बादो क्यो? यह पाखण्ड बंद होना चाहिए। जब इलेक्ट्रोनिक मीडीया स्वयं काग्रेस के प्रवक्ता का दायित्व निभा रहा है तो फिर सजीव प्रसारण का क्या औचित्य? विपक्ष का हाल यह है कि बी. जे.पी. जहॉ बजट का विरोध करती है तो जदय समर्थन करती है और संजीवनी बनी सपा बसपा पार्टियॉ बजट का तो विरोध करती है, लेकिन सरकार को समर्थन देती हैं । जब संसद में बैठे जन प्रतिनिधि ही जन बिरोधी निर्णयों में सरकार का साथ दे तो भला जनता को इन भाषणों को क्यों सुनाया जाता है? पिछले 66बर्षो से भाषणों का सिलसिला चला आ रहा है, लेकिन इंदिरा गॉधी और

राजीव गॉधी के अलावा आज तक किसी भी प्रधानमंत्री ने परिवार नियोजन को महत्व नही दिया और इंदिरा गॉधी ही एक मात्र ऐसी नेता रही है जिनके कार्यकाल में प्रतिवर्ष के बजट मे परिवार नियोजन को उचित स्थान मिलता था लेकिन आज देश की सबसे बडी समस्या बढती आबादी के लिये केन्द्र सरकार और विपक्षी दल कें साथ साथ सरकार के समर्थक दल भी उदासीन है। यहां तक कि किसी भी राज्य सरकार के बजट मे परिवार नियोजन को कोई स्थान नही। इस जवलंत समस्या की इतनी अनदेखी भारत की अस्मिता एंव अखंडता के लिये अशुभ संकेत है।

समीक्षा– आपने बजट जैसे गंभीर विषयो से चर्चा शुरू की और चार पाच लाइन लिखने के बाद सीधे वर्तमान कांग्रेस सरकार क विरोध पर आ गये। ऐसा लगा जैसे कि भाजपा का समर्थन करने के उददेश्य से ही आपने बजट की चर्चा की। मैने तो कही ऐसा नही देखा जिसमे मीडिया सत्ता पक्ष का एकपक्षोय गुणगान कर रहा हो। बजट चर्चा करते करते इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी, संजय गांधी की तानाशाही प्रवृत्ति का गुणगान करना कोई पहली बार नही है। नीतियो के मामले मे संघ परिवार अपने को नेहरू परिवार के अधिक निकट तथा मनमोहन सिंह नरसिंह राव से ज्यादा दूर पाता है। व्यक्ति पूजा तथा केन्दीयकरण संघ परिवार का भी अच्छी लगती है तथा नेहरू परिवार को भी। जहां नेहरू परिवार ने मनमोहन सिंह नरंसिह राव को अस्थिर किया वहां भाजपा ने भी इन्हे कमजोर करने मे सारी ताकत लगाई। एक ही थैली के चट्टे बट्टे दो भागो मे बटकर समाज को भ्रमित कर रहे है। मुलायम मायावती आदि की चर्चा व्यर्थ है क्योकि वे तो कही से भी राजनैतिक दल न होकर व्यवसायी मात्र है। ममता बनर्जी की भूला ने इन दोनो व्यापारियों को लाभ उठाने का अवसर दिया तो इस व्यापार मे आपका गलत क्या दिखता है।

2 श्री अरविन्द अग्रवाल ,नोएडा ,उत्तर प्रदेश

विचार– प्रवीण जी के साथ एक बैठक में नोयडा में आपसे मेरी कुछ चर्चा हुई थी । आपने कहा था कि सिर्फ संघ परिवार ही हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व नही करता । हम सब को मिलकर हिन्दुत्व की संघ लाईन से हटकर भी सोचना चाहिए।

प्रश्न उठता है कि अकबरुदीन सरीखे लोग कुछ भी हिन्दू समाज के विरुद बोलते रहे और हम हिन्दू चुपचाप सुनते रहे यह मार्ग ठीक है अथवा अमेरिका इसराइल सरीखे ताकतवर बनकर ऐसे तत्वों की जबान बन्द करना ठीक है। मेरा उददेश्य इन मार्गो मे से क्या उचित है इसकी विस्तृत समीक्षा करना है । मैं मानता हूॅ कि आप हिन्दू और मुसलमान के रुप में वर्ग विभाजन के विरुद्व है तो ऐसे ऐसे जहरीले विचारों के प्रचार प्रसार को राकने का तरीका क्या हो? मेरे विचार में तो ऐसे आतकवादी विचारों पर नियंन्रण के लिये ऐसे तत्वों को भारत मुक्त कर देना चाहिए तभी भारत एक मजबूत हिन्दू राष्ट्र के रुप में आगे आकर ऐसी समस्याओं से मुक्त हो सकेगा? मै इस विषय पर आपकी विस्तृत समीक्षा चाहता हूॅ।

उत्तर – अपनी–अपनी क्षमता का आकलन करके ही अपनी प्राथमिकताएॅ तय की जाती हैं । एक घडी का एक काटा एक मिनट में पूरा एक चक्कर लगा लेता है तो दूसरा कांटा एक घंटे में और तीसरा एक दिन में तो चौथा एक वर्ष म । सभी कांटे अपनी अपनी धुरी पर स्वतंत्र घ्मते हुए भी वार्षिक काटे को गति देते रहते है। पृथ्वी की चाल भी कुछ इसी तरह होती है। मनुष्य भी अपनी –अपनी क्षमता अनुसार ऐसे ही चलता है। किसी की सर्वोच्च प्राथमिकता परिवार तक ही सीमित होती है तो किसी अन्य की राष्ट्र तक तथा किसी अन्य की विश्व समाज तक । व्यक्ति यदि परिवार तक सोमित है तो उसका कुछ अंश विश्व समाज के लिये होता ही है और यदि वह विश्व समाज के लिये समर्पित है तो व्यक्ति के साथ भी उसका जुडाव रहेगा ही । व्यक्ति से लेकर समाज तक की सभी इकाईया एक दुसरे के साथ संबद्ध होती है। मैं प्रवृत्ति स ब्राम्हण हूॅ और आप क्षत्रिय । स्वाभाविक है कि दोंनो का कार्य करने का ढंग अलग –अलग होगा । यह भिन्नता एक दूसरे के विरुद्ध नही है क्योकि कही न कहो इनका लक्ष्य समान है। आप अपनी क्षमता अनुसार राष्ट्र को सर्वोच्च इकाई मानकर उसकी सर्वाधिक चिन्ता करते है तो मैं ब्राम्हण होने के कारण समाज को सर्वोच्च मानकर उसी दिशा में ज्यादा सोंचता हूॅ। व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में बाम्हण ,क्षन्निय ,वैश्य ,शूद्र, कें चारों गुण विशष होते है जो उस व्यक्ति का उस समुदाय के साथ जोडकर रखते है। व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों में भी तीन कें संस्कारो का समावेश होता हैं। (1) जन्म पूर्व के संस्कार (2) पारिवारिक वातावरण (3) सामाजिक परिवेश । व्यक्ति पर तीनों का प्रभाव होता है किन्तु किस व्यक्ति पर तीन में से किसका ज्यादा प्रभाव है यह बताना कठिन होता है। जन्म पूर्व के संस्कारों पर तो हिन्दू मुसलमान का कोई प्रभाव बदलना संभव नही किन्तु पारिवारिक वातावरण तथा सामाजिक परिवेश को प्रभावित करना संभव है। यही कारण है कि हिन्दू और मुसलमान समाजिक रुप स भी दो अलग अलग समूहो मे दिखते है। एक कसाई के हाथों गाय की रक्षा करने का उद्देश्य सबका समान हो सकता है किन्तु मार्ग सबका, भिन्न–भिन्न भी हो सकता है। एक ब्राम्हण प्रवृत्ति वाला उसके हृदय परिर्वतन की चेष्टा करेगा तो क्षन्निय उसे झापड मार सकता है। वैश्य लोभ लालच दे सकता है या धोखा दे सकता है और शूद्र देखकर भी उससे अपने को नही जोड पाता। यदि सामाजिक संगठन की समीक्षा करें तो हिन्दू आम तौर पर ब्राम्हण प्रवृत्ति को सवोंच्च प्राथमिकता देता है तो मुसलमान क्षन्निय प्रवृति को स्वाभाविक मार्ग मानता ह, इसाई वैश्य मार्ग को और साम्यवादी शूद्र मार्ग को।

यदि हम स्वतंन्रता पूर्व का आकलन करें तो स्वतंन्रता संघर्ष में भी गांधी ब्राहम्ण प्रवृत्ति के पक्षधर थे तो सुभाष चन्द्र बोस भगत सिह चन्द्रशेखर आजाद आदि क्षन्निय मार्ग के दोंनो का लक्ष्य भी एक था और नीयत भी साफ थी । त्याग के मामले मे

क्रान्तिकारी गांधी से आगे थे किन्तु देश काल परिस्थिति अनुसार गांधी का मार्ग ज्यादा सफल हुआ, क्योकि टकराव किसी वैश्य प्रवृत्ति वाले अंग्रेजो से था। यदि यही टकराव साम्यवादी रूस चीन के साथ रहा होता या किसी मुसलिम देश से होता ता गांधी का मार्ग सफल नही होता। गांधी न शत्रु की मानसिकता का आकलन करक संघर्ष का मार्ग चुना और कान्तिकारियो ने परंपरागत। अहिंसा की ताकत को प्रमाणित होने के बाद भी आज तक कुंछ लोग मेरी मुर्गी की तीन टांग का राग अलापते देखे जा सकते है। ऐसे लोगो का फिर से सोचना चाहिए ।

गांधी का मार्ग ठीक है या सुभाष का यह विचार तो तभी किया जा सकता है जब तानाशाही हो तथा व्यवस्था परिवर्तन के कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो । स्वतंन्नता के बाद भारत मे लोकतंन्न है लोकतंन्न मे ऐसी बहस हो ही नही सकती । लोकतंन्न मे आप हिन्दू राष्ट्र भी बना सकते है और अकबरुद्दीन सरीखे लोगो को फांसी भी दे सकते है किन्तु यह सब आप किसी व्यवस्था के माध्यम से ही करा सकते है ,स्वतंन्न रुप से नही । स्वाभाविक ह कि ऐसी व्यवस्था प्रवीण तोगडिया और अकबरुद्दीन के बीच फर्क नही कर सकती। हिन्दू राष्ट्र घोषित होने के बाद भी तब तक फक नही कर सकते जब तक आप मुस्लिम देशों की नकल करते हुए ईश निदा कानून सरीखा कोई प्रावधान न कर लें । चकि हिन्दू जन्म से ही व्यक्तिगत आचरण को महत्वपूर्ण मानता है और ईश्लाम संगठन शक्ति को । हिन्दू अपने को गाय के समान मानता है और मुसलमान शेर के समान । ऐसी स्थिति मे गाय सशक्तिकरण एक आवश्यकता होते हुए भी संभव नही। अस्सी वर्षो से संघ परिवार ने सारा जोर लगा दिया किन्तु कितने प्रतिशत सफलता मिली । मुस्लिम आबादी से प्रत्यक्ष टकराव मे तो ये गाय रुपी हिन्दू कितना टिकेगे यह दूर की बात है किन्तु गुप्त मतदान तक में इनक हिन्दुत्व में कोई मौलिक अन्तर नही दिखता । अकबरुद्दीन ने ठीक ही कहा था कि यदि दो घंटे के लिये बीच से पुलिस हट जाये तो वे मुट्ठी भर लोग इन गायों का सफाया कर सकते है । बदले में प्रवीण तोगडिया ने जो कुछ भी कहा उसमें लेश मान्न की सच्चाई नही । भारत की लोंकतांन्निक व्यवस्था ऐसे कट्टरवादी तत्वों सें सुरक्षा ही देती है। इस व्यवस्था को कमजोर करना घातक ही होगा। न भारत दुनिया में अकेला निर्णायक है और न हिन्दू भारत में। साम्यवाद ने दनिया में अपने तरीके से माग बनाना चाहा जो अन्त में राह बदलने को मजबूर हुआ। इस्लाम अपने तरोके से दुनिया को बदलना चहता है जो धोरे –धीरे संकट में आता जा रहा है । संघ परिवार तो दनिया में कोई विशेष ताकत है ही नही । भारत में यदि कुछ लोग इस क्षन्निय प्रधान आवाज को जिन्दा रखने की कोशिश कर रहे है यह उनके लिये भी घातक है और हिन्दुओं के लिये भी । केन्द्रीयकरण, तानाशाही ,कभी लोकतंत्र से अच्छी नही हो सकती । लोक तंत्र मे बल प्रयोग का समर्थन कभी विचार मंथन से उपर नही हो सकता। भारत जैसे देश में जहॉ बहुजन हिन्दू है आर हिन्दुओं में भी बहुजन व्यवस्था को मानने वालों का है वहॉ सामाजिक हिंसा का सर्मथन या तो इस्लाम का सर्मथन है या साम्यवाद का । ऐसी आवाज उठाने वाला कोई चोटो वाला भी हो तब भी उसका सामाजिक हिंसा सर्मथक मार्ग हिन्दुत्व का मार्ग नहीं कहा जा सकता । यदि आप मानते है कि भारत में लोकतंत्र है तो आपको सामाजिक हिंसा का विरोध करना हो चाहिए। यदि आप भारत में लोकतंत्र को असफल मानकर केन्द्रित तानाशाही के पक्षधर है तथा उस मार्ग के लिये भी लोकतांत्रिक मार्ग को असंभव मानते है तो आप अफजलगुरु ,नक्सलवाद ,या प्रज्ञा ठाकुर असीमानंद का मार्ग भी पकड सकते है। इन सबका मार्ग गलत था या सही यह अपनी –अपनी सोच है। किन्तु ये सब अपने मार्ग के प्रति इमानदार थे न कि अकबरुद्दीन प्रवीण तोगडिया अशोक सिंघल सरीखे नाटकबाज। ये नाटक बाज लोग शक्तिप्रिय हिन्दुओं मुसलमानों को हिंसा के लिये प्रोत्साहित तो करते है किन्त स्वयं तो कभी हिंसा नही करते । प्रवीण तोगडिया अशोक सिंघल या उनके समर्थक या तो व्यवस्था का सर्मथन करें या लोकतांत्रिक तरीके से लोगो के व्यवस्था परिवर्तन के लिये सहमत करे अन्यथा एक बन्दुक लेकर जाकर ऐसे तत्वों की हत्या कर दें । किसने रोका है इन्हे ऐसा बम पटकने से? स्वयं तो कमान्डर के रुप में पीछे रहेंगे ,अपने भागने के सारे द्वार खुले रहेंगे और शेष समाज को दंगो के सर्मथन में उकसाते रहेंगे। यह मार्ग न पहले ठीक था न अब ठीक है। विशेषकर तब तो बिल्कुल ही गलत ह जब दुनिया क्षत्रिय प्रवृत्ति और शूद्र प्रवृत्ति की राजनैतिक व्यवस्था को अस्वीकार करकें ब्राम्हण और वैश्य प्रवृत्ति के बीच विभाजित हो रही है। अब दुनिया में सैनिक टकराव की संभावनाए घट रही है । ऐसी स्थिति में भारत और विशेषकर हिन्दुत्व की ब्राम्हण प्रवृत्ति की संभावनाऍ पबल है। भविष्य में प्रति स्पर्धा इन दो के बीच होनी है। जिसमें हिन्दुओं की ब्राम्हण प्रवृत्ति पाश्चात्य वैश्य प्रवृत्ति को पछाड सकती है।

जबसे हम लोगो ने हिन्दुत्व को संगठन से निकाल कर उसके मूल स्वरुप की दिशा देने की कोशिश ‘ शुरु की तभी से हम लगातार आगे बढ रहें है । हमारे इस प्रयत्न में संघ परिवार के लोगो का सर्वाधिक समथन मिल रहा है। संघ परिवार गाय रुपी हिन्दु को शेर बनाना चाहता है किन्तु साठ वर्षो की स्वतंत्रता के बाद भी वह हिन्दुओं में उतना ही लोकप्रिय रह पाया है जितना स्वतंत्रता के समय था । वह कभी एक दो किलो मोटर आगे बढ जाता है तो कभी दो किलोमोटर पीछे चला जाता है किन्तु हिन्दुत्व की हमारी परिभाषा एक दो वर्षो में लगातार आगे बढ रही है और यद्पि हमारे और संघ परिवार के बीच कोई तुलना न है न हो सकती है किन्तु धीरे –धीरे संघ परिवार या तो अपनी रणनीति बदलेगा या इतिहास में समा जायगा ।

आपने ऐसे तत्वो से निपटने का मार्ग पूछा है । मैंने बीस पचीस वर्ष पूर्व ऐसे तत्वा से निपटने का मार्ग सुझाया था। यह मार्ग ज्ञान तत्व एक सौ पांच में भी छपा है और नई दिशा पुस्तक में भी । वह सुझाव इस तरह है– धार्मिक आधार पर चार सम्प्रदाय होते हैं।

1 जो मान्यता में कट्टरवादी हैं तथा आचरण में भी कट्टरवादी हैं। (दूसरों के मूल अधिकारों का हनन करते हैं।)

2 जो मान्यता में शांतिप्रिय हैं और आचरण में कट्टरवादी।
3 जो मान्यता में कट्टरवादी हैं परन्तु आचरण में शांतिप्रिय।

4 जो मान्यता तथा आचरण दोनों में शान्तिप्रिय हैं। कट्टरवादी मुसलमान पहले श्रेणी में, कट्टरवादी हिन्दू दूसरी श्रेणी में, शांतिप्रिय मुसलमान तीसरी श्रेणी में और शांतिप्रिय हिन्दू चौथी श्रेणी में आते है। हमें पहली श्रेणी को तत्काल नष्ट कर देना चाहिये तथा दूसरी को भी नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिये तीसरी श्रेणी का हृदय परिवर्तन और चौथी श्रेणी का अनुकरण उपयुक्त मार्ग है।

वर्तमान स्थितियों में पहली और दूसरी श्रेणी के विरूद्ध तीसरी और चौथी श्रेणी को एकजुट हो जाना चाहिये।
2 कट्टरवादी हिन्दू और कट्टरवादी मुसलमान ऐसा ध्रुवीकरण पसन्द नहीं करेंगे।
3 धार्मिक एकीकरण किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान नहीं है। भारत के सब लोग हिन्दू, मुसलमान या इसाई होकर किसी भी एक धर्म के हो जावें तब भी चोरी, डकैती बलात्कार, आतंकवाद, मिलावट आदि में से किसी समस्या का कोई समाधान सम्भव नहीं है।
4 धर्म संकट में हैं धर्म की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य हैं। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, सिक्ख सभी धर्म प्रेमियों को एकजुट होकर अधर्म के विरूद्ध संघर्ष शुरू कर देना चाहिये।
5 यदि भगवान राम का पृथ्वी पर अवतरण हो जाये तो वे सर्वप्रथम आसुरी सशक्तियों से संघर्ष शुरू कर देंगे चाहे ऐसे तत्व किसी भी धर्म (सम्प्रदाय) के हों।
6 धर्म की व्यवस्थाएँ कुछ लोगों के जीवनयापन के साथ जुड़ गई हैं। अतः धर्म की अपने अनुकूल व्याख्या करना उनकी मजबूरी भी है।

मैंने आपकी इच्छानुसार बहुत विस्तृत चर्चा की है । आपके अगले प्रश्न की प्रतीक्षा करुगा ।

3 श्री अमर हबीब,आंतर भारती पत्रिका से

विचार – नेताओ के घर मे नेता ही क्यो पैदा होते है?

शरद पवार जी की परिवारशाही शुरू हो गयी है। बेटी, सांसद, भतीजा विधायक, बाद मे मंत्री अब भूतपूर्व मंत्री, यह बात केवल शरद पवार की ही नही है। भाजपा के माननीय गोपीनाथ मुंडे का हाल क्या है? उनकी बेटी विधानसभा मे, भतीजा विधान परिषद मे। आप किसी भी जिले मे पहुंचिये और देखिये हर स्थान पर कम ज्यादा अनुपात मे आपको यही बात दिखेगी।

नेहरू परिवार का यह आदर्श है । पंडित नेहरू, उनकी कन्या ,कन्या का बेटा, बेटो की पत्नी और अब बेटा आगे प्रियंका और उनके बेटा बेटी आयेंगे ही । नेहरू परिवार की आलोचना करने वाले मुलायम सिंह जी ने भी वही किया। पुत्र को उत्तर प्रदेश की गद्दी सौपकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। पूरे देश मे ऐसा ही चित्र है । बीते समय मे इन नेताओ का विरोध विरोधी पक्ष करता था। अभी तो वह भी समाप्त हुआ। घर के अंदर ही विरोध का आरंभ हो गया। चाचा भतीजा भाई –भाई के झगडे शुरू हुए। सत्तान्तर होने पर भी सत्ता उन्ही के परिवार मे रहेगा। दूसरे आंखे फाडकर देखे। वे केवल इस बात की चर्चा करे कि गलती इसकी हुई या उसकी। सत्ता की थाली पर बैठेगे वे ही । बाकी सब केवल तमाशबीन।

किसी समय ग्राम शासन मे बलुतेदार (पूरो ग्राम व्यवस्था मे बढई नाई धोबी आदि कुशल कारागिरों को गांवो के लोग, काम के बदले उपज का कुछ अंश देते थे) पद्धति थी। अंग्रेज आये और वह पद्धति समाप्त हो गयी। अंग्रेज जाने के बाद हमारे देश ने लोकतंत्र राज्य व्यवस्था अपनायी । लोकसभा, विधान सभा , जिला परिषद पंचायत समितियां और ग्राम पंचायतें अस्तित्व मे आयी। अखाडे मे नये पहलवान उतरते थे। उसी तर्ज पर नये नये राजनीतिज्ञ राजनीति मे उतरे। उन्होने भिन्न भिन्न पदो की शोभा बढायी। सत्ता सेवा करने का साधन नही तो मेवा खाने का माध्यम है। यह पहचानने मे देरी नही लगी। एक बार शेर के मुंह, आदमी का लहू लगने की देरी कि उससे उसका चस्का लगता है ऐसा कहा जाता है । उसो तरह सत्ता भोगने वालो के हाथो से सत्ता छूटते नही छूटती। सत्ता पर हमेशा के लिये हमारा कब्जा बना रहे। इस इच्छा के परिणाम स्वरूप नयी बलुतेदारी अस्तित्व मे आयी। इस तरह राजकीय परिवार पैदा हुए। राजनीतिक बलुतेदारी पंचवार्षिक होती है।

बलुते बलुतेदार को दिया जाने वाला फसल का भाग वार्षिक होते थे। गांव के बढई साल मे एक बार आकर एक बोरा अनाज ले जाता था। बलुतेदार पांच साल के बाद एक बार आते ह। व बलुते मे बोट चाहते हे। एक बार वह हमने दिया कि पांच वर्षो की छुट्टी। इस दरम्यान दूर दूर तक आपको उनकी गंध तक नही मिलेगी। बढई का बेटा जैसा बढई काम करता

था । उसी तरह नेता का बेटा नेता होगा । निश्चित बलुतेदारी जिस तरह वंश परंपरा से चलती थी उसी तरह राजकीय बलुतेदारी भी परंपरा से चलती है।

अमेरिका का अध्यक्ष दो टर्म से अधिक समय तक पद पर बना नही रह सकता। ऐसा कानुन हमारे देश मे नही है । बनने की संभाना भी नही है। कोई कितने भी सालो तक सत्ता मे बना रह सकता है। मृत्यु तक सत्ता भोगे जाते समय सत्ता बेटे या भतीजे को सौपकर ही आंखे मिटी जाए। सत्ता से इतना मोह क्यो होता है? पीढी दर पीढी उसे बचाने की चाह क्यों ? इसका बहुत आसान उत्तर है। सत्ता के द्वारा अधिकार , और अधिकार देता है सम्पत्ति और सम्मान। सम्पत्ति के मोह को तृप्त करने के लिये सत्ता चाहिये। सत्ता यह सेवा का साधन न होकर भोग का साधन बनने से उसमे परिवारवाद शुरू हो गया।

लोग पूछते है। महात्मा गांधी एस एम जोशी इनके जैसो के बच्चे राजनीति मे क्यो नही आये? इसका सीधा सा उत्तर है कि इन लोगो ने सत्ता को भोग के साधन के रूप मे नही देखा। पूरा जीवन वे जलते अंगारो पर चले। उनक बच्चो ने उनके परिवार का झुलसना देखा और अनुभव किया। राजनीति का अर्थ चैन नही। त्याग है। इस तरह अंगारो पर चलना कठिन है। यह जानकर इन महात्माओं के बच्चे राजनीति मे नही आय। नेताओ ने चोरियां की। चोरी की सम्पत्ति पर मौज मस्ती की जा सकती है। यह आज के नेताओ के बच्चो ने बचपन से देखा । इस कारण उनके बच्चे राजनीति की ओर खिचे आये । चोर का बच्चा चोर बनता है। लेकिन साधु सन्यासी का सन्यासी नही बनता। ऐसा जो कहा जाता है वह झठ नही है।

कई पाश्चात्य देशो मे पहिले ब्यापार मुक्त हुआ । बाद मे लोकतंत्र आया । अपने देश मे इससे एकदम उल्टा हुआ। पहिले लोकतंत्र राज्यव्यवस्था आयी और अब कही बाजार धीरे धीरे खुला हो रहा है। व्यापार खुला न होने से अर्थव्यवस्था पर सत्ता का नियंत्रण बना रहा। सत्ता के छीके पर सम्पत्ति के मक्खन का लोढा होने से उस गटकने के लिये उसके आजू बाजू बिलाओ का मंडराना बिलकुल स्वाभाविक है। किसी समय संसद विधानसभा मे आजादी के मतवाले सैनिक दिखते थे। उन्ही समागृहो मे आज अपराधी घूमते हुए नजर आते है। जब तक सत्ता के छीके पर यह मक्खन रहेगा तब तक इन बिलावो पर रोक लगाना सम्भव नही। मक्खन को गट्म करने के लिये अगर धार्मिक सीढी का उपयोग होता होगा तो वे कटटर धार्मिक बन जायगे। उन्हे अगर लगा कि सेक्युलर सीढी कुछ अधिक उपयोगी है तो वे उस सीढी के सहारे मक्खन तक पहुंचने का प्रयत्न करेंगे। राजकीय दलो का नीतियों से तलाक हो चुका है और उनका रूपान्तरण सत्ताकांक्षी मे हो चुका है।

पिछडे इलाके मे प्रगति के अवसर नही होते हुए भी तो इने गिने स्थिति मे राजनीति का विकल्प कई लोागे को ठीक लगता है। राजकीय नेताओ की जो धांधली मची है। वह इसी बात का परिणाम है। मांग सकता न हो भोख तो नेतागिरी सीख ऐसा कहा जाता है। नेतागिरी बिन पूंजीवाला काला धंधा है। शुरू मे अपनो से नीचेवालो पर दादागिरी और बलिष्ठो के सामने लाचारी करनी आनी चाहिये। नम्बर दो का धंदा कर रहे हो तो बहुत अच्छा। रिश्तो नातों का दायरा बडा होना पूरक। लोगो को मूर्ख बनाने की कला मात्र पास होना आवश्यक है। धीरे धीरे सब स्थापित होता जाता है।

अभी तो स्थापत्य निर्माण को ही विकास माना जाता है। पिछडे इलाके के विकास के नाम पर कई निर्माण चलते रहते है। उसमे कई ठेकेदार मम्मिलित होते हे। इनमे से कई नेता के बेटे के नाम पर काम करते है। कुछ स्थानो पर नेता का बेटा अपने नाम का उपयोग नहो करता लेकिन चमचा नेता ठेकेदार उसके नौकर जैसा काम करता है। अधिकतर उदयोन्मुख नेता ठेकेदारी करते हुए देखे जाते है।

इंजीनियर बनकर कोई इंडस्ट्री शुरू करन के स्थान पर बाप की विधायकी का लाभ उठाते हुए सहकारी संस्था खडी करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सौदा ही होगा। निजी कारखाने मे घाटा हुआ तो खुद का होगा।सहकारी संस्था अगर डूब भी गयी तो अपने बात का क्या जाता है? संस्था बनाने से लोक संपर्क बढता है आर नेता बनने का मार्ग खुल जाता है।

चुनाव प्रक्रिया काफी खर्चीली हुई है। चुनाव मे किया जानेवाला खर्च किसके हाथो द्वारा किया जाए? अकेला उम्मीदवार पूरा व्यवहार नही कर सकता । करने गया तो पकडा जा सकता है। ऐसे समय भरोसे का आदमी आवश्यक है। राजनीति मे काई किसी पर भरोसा नही करतां उसके लिये चाहिये घर का आदमी यह काम भाई–भतीजा, या बेटा ऐसा ही कोई आप्तजन करता है। पैसे बांटने की ट्रेनिंग पूरी हुई किवह भी राजनीति के अखाडे मे उरतने के लिये पात्र हो जाता है। बाप का चुनाव हो जाता है। बेटे का प्रशिक्षण दोनो का काम बन जाता है। चुनाव मे होने वाला अनाप शनाप व्यय भी परिवारवाद निर्मिती का एक प्रमुख करण है।

नेताओ के बच्चो मे नेतृत्व के जन्मजात गुण यदा कदा ही देखे जाते है। जहां तक बुद्धिमता का सवाल है तो उसका तो सवाल ही नही है। बाप नेता न होता या उसकी शिक्षा संस्था न होती हो अधिकतर उदीयमान नेता 9वी कक्षा पास होने से रह जाते। अभी वे ही एल बी एम बी ए पार किये दिखते है। इन बच्चो को राजनीति मे स्थान मिले । इसलिये तरह तरह की तिकडमे की जाती है। शासकीय समितियों मे नियुक्ति उन्ही मे से एक प्रकार है। समाज मे कई गुणी लोग होते है। फिर भी इन बच्चो को यह अवसर दिया जाता है। कई बार जन्मदिन जैसे कार्यक्रमो का आयोजन कर इन लाडलो को चमकने का अवसर दिया जाताहै। आजकल तो डिजीटल बोर्ड पर इन्ही बच्चो के थोबडे ही प्रदर्शित किये जाते है।

आने वाले दस वर्षो मे स्थिति मे कितना अन्तर आयेगा यह बताना मुश्किल है। लेकिन दुनियां मे जो हवा बह रही है उसका अन्जाम लेने पर ऐसा लगता है। इन नेताओ के दिन अब लदने को है। राज्य तथा राष्ट्रीय राजनीति मे विद्यमान कचरा भरती कम होगी। हाल के दिनो मे वस्तुओ के उत्पादन के संदर्भ मेजिस तरह हम अन्तर्राष्ट्रीय मानक अपनाने लगे है । जिस तरह साहित्य के लिये विश्वस्तरीय दर्जे की अपेक्षा करने लगे है। बिलकुल उसी तरह नेतृत्व की कसौटी लगनी है। ऐसा हुआ तो बवंडर शान्त होते समय जिस तरह कूडा करकट जमीन पर गिरने लगता है बिल्कुल उसी तरह नेताओ के बच्चे राजनीति से बाहर फेक दिये जायेगे। अंगजो के आगमन के बाद ग्राम व्यवस्था मे अन्तर्भूत बलुतेदारी समाप्त होनेवाली है। मेरा बाप नेता । इसलिये मै भी नेता बनू। यह फटीचर मंत्र कालवाहय होगा ही। प्रश्न इतना ही है कि यह जल्दी हो इसलिये क्या हम कुछ करने जा रहे है?

उत्तर –भारतीय समाज व्यवस्था ने सम्मान शक्ति और सुविधा के एकत्रीकरण पर कठोर प्रतिबंध लगा रखे थे । इसी व्यवस्था को वण व्यवस्था कहते थे । जिसके विकृत स्वरुप ने योग्यता की जगह जन्म का आधार मान लिया और वर्ण व्यवस्था बदनाम हुई । साम्यवाद समाजवाद ने इस विकृति का लाभ उठाकर तीनो को अपनी शूद्र व्यवस्था के पास इकट्ठा कर लिया । पश्चिम के लोकतंत्र ने तो ज्ञान,सत्ता और व्यवस्था का आंशिक एकत्रीकरण ही किया किन्तु समाजवाद साम्यवाद ने तो ज्ञान और व्यापार का समूल सत्ता में विलोन कर लिया । यह काम स्वतंत्रता के बाद बहुत चलाकी से नेहरु, अम्बेडकर की टीम ने किया। कुछ अन्य नेता भी समाजवाद के नाम पर इस हवा में बह गये। परिवारवाद के जन्मने और बढ़ने का मुख्य कारण यह सम्मान,शक्ति,और सुविधा का सत्ता के पास एकत्रीकरण भी है। और इसका समाधान भी इनका पृथककरण ही है। व्यापार को यदि राज्य सत्ता से पूरी तरह स्वतंत्र कर दिया जाय तो यह एकाधिकार घटेगा। यदि ज्ञान भी सत्ता से दूरी बना ले तो परिवार वाद टूट सकता है। जो आज तो स्थिति यह है कि अन्ना हजारे को छोडकर एक भी कोई अन्य सन्त नही दिखता जो या तो इन नेताओ के साथ चापलूसी न कर रहा हो या स्वयं नेता बनने की तिकडम मे व्यस्त न हों । मै आपके लेख की भावना से पूरी तरह सहमत हूँ।

4 श्री चिन्मय ब्यास , देहरादून

विचार–आप बहुत ही लगन तथा ठीक दिशा मे काम कर रहे है। जिस तरह विनोबा जी ने आचार्यो का महत्व बताया था उसी रह आपमे भी मुनि से भो आगे बढकर आचार्य की क्षमता भी दिखती है और नीयत भी। किन्तु जब तक राजनीति और समाज मे बिखरे अच्छे लोगो को एकजुट नही किया जायगा तब तक कोई परिवर्तन संभव नही है। आपने संविधान लिखा। कहां तक पहुंचा? कुछ बीच भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रो को छोडकर शेष भारत आपके मिशन से अछूता है। यदि प्रयत्न कोई सार्थक परिणाम न दे सके तो प्रयत्न निरर्थक है और परिणाम तक पहुचने के लिये आप जैसे अनेक लोगो को एक जुट होना होगा। ऐसे लोगो को एक जुट करिये जो अच्छे लोग हो, दलो से प्रतिबद्ध न हो , एक स्वतंत्र सरकार बनाने के लिये सहमत हो। ऐसे लोग मिलकर मतदाताओ के लिये एक मार्ग दर्शक पम्पलेट भी वितरित करावे। आम जनता को शिक्षित किया जाय कि वह लोभ लालच मे वोट न दे । दलगत राजनीति से दूर रहने वालो को चुने तथा अच्छे लोागे को चुने। यदि आपने ऐसा मार्ग चुना तो सफलता की अधिक संभावना है।

उत्तर– मै एक विचारक हूँ । संगठन खडा करना मेरे लिये कठिन कार्य है। मैने दो हजार पांच से नौ तक के चार वर्ष दिल्ली मे रहकर इन तथाकथित महापुरूषो को एकजुट करने मे बर्बाद किये । सबके अपने अपने एजेंडे है और सभी अपने मार्ग पर सबको एक जुट करना चाहते है। सभी कहते है कि अच्छे व्यक्ति को चुनो। मेरा मत इससे भिन्न है।

तानाशाही और लोकतंत्र मे बहुत फर्क है। तानाशाही मे नीति निर्माण और कार्यान्वयन कर्ता दोनो का अन्तिम निर्णय एक व्यक्ति या ग्रुप के पास ही होता है जबकि लोकतंत्र मे दानो कार्य दो अलग अलग इकाइया के पास होते है और दोनो इकाइयां किसी संविधान से बंधी होती हे। इस तरह लोकतांत्रिक व्यवस्था मे तानाशाही तो संविधान की ही होती है जो तीनो इकाइयों को नियंत्रित करता है।

नीतिगत निर्णय विधायिका करती है और कार्यान्वयन कार्यपालिका । नीति गत निर्णय के लिये अच्छी नीतियां अधिक महत्वपूर्ण होती है और नीयत दूसरे क्रम पर। कार्यान्वयन मे नीयत अधिक महत्वपूर्ण होती है और नीतिया दूसरे क्रम पर । दोनो के लिये दोनो महत्वपूर्ण होती है किन्तु दोनो की अपनी अपनी अलग प्राथमिकताएं है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद विधायिका मे सक्रिय लोगो की नीयत आज की अपेक्षा अधिक अच्छी हाते हुए भी उनकी गलत नीतियों के कारण चरित्र पतन हुआ। कार्यपालिका में भी जो चरित्रपतन हुआ उसका मुख्य कारण नीति निर्माताओं की गलत नीतियां थीं। समाज पर भी गलत नीतियों का दुष्पभाव हुआ। एक घर में आग लगी है। यदि आग सीमित होगी तो अपने घर की सुरक्षा न करके पहले आग बुझाई जायेगी और यदि आग असीमित होगी तो पहले अपनी सुरक्षा करने के बाद आग बुझाने में लगा जायेगा। यह निर्णय किसी सैद्धान्तिक आधार पर न होकर देश काल परिस्थिति क आकलन के आधार पर किया जायेगा। आपका मानना है कि चरित्र पतन का कारण व्यक्ति परिवार और समाज में अधिक हैं और राजनैतिक व्यवस्था में कम। मेरी सोच इसके ठीक विपरीत है। मेरा मानना है कि चरित्र पतन में व्यक्ति परिवार और समाज की भूमिका शून्य से भी कम है अर्थात चरित्र पतन का सम्पूर्ण दायित्व राजनैतिक व्यवस्था पर है जिसने

स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही गांधी की लोक नियंत्रित तंत्र की धारणा को बदलकर लोक नियुक्त तक सीमित कर दिया। व्यक्ति परिवार और समाज में फैले अच्छे चरित्र के कारण इन गलत नीतियों का परिणाम धीमी गति से हुआ अन्यथा नेहरू और अम्बेडकर ने मिलकर जो नीतियां बनाई उसके दुष्परिणाम बहुत ही जल्दी स्पष्ट हो जाते।

अब आप चाहते हैं कि विधायी नीतियां वैसी ही रहें और अच्छे लोग जाकर उनके दुष्परिणामों को ठीक कर दें। यह कार्य असंभव है। हम पिकनिक के लिये चन्दा करके किसी काषाध्यक्ष को खर्च करने का दायित्व देते हैं। पहले पिकनिक में छिपकर पांच दस प्रतिशत भ्रष्टाचार होता है तो हम आगे के पिकनिक में अधिक इमानदार को वह कार्य सौंपते हैं किन्तु हम बार बार कोषाध्यक्ष बदलते हैं और भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ती ही जाती है। तीस चालीस वष बाद तो नौबत यह आई कि भ्रष्ट कोषाध्यक्षों के बीच एक व्यवस्था बनी कि वे कोषाध्यक्ष के चुनाव में ही साम दाम दण्ड भेद आजमाकर किसी अच्छे आदमी के प्रवेश का मार्ग बंद कर दें। बजरंग मुनि और अन्ना हजारे का कथन है कि पिकनिक के लिये इकट्ठा हो रहा धन लगातार बढ़ता जा रहा है और इस धन के संग्रहण की मात्रा जितनी ज्यादा होगी उसी गति से भ्रष्टाचार भी बढ़ेगा। लेकिन बाबा रामदेव, प्रणय पंडया अथवा आप सरीखे अच्छे लोग पिकनिक का चंदा घटाने की अपेक्षा इमानदार लोगों को चुनने की वकालत करते रहते हैं जो मेरे विचार में दश काल परिस्थितियों के बिल्कुल विपरीत है। यद्यपि देश के स्थापित व्यक्तियों में मैं ऐसा कहने वाला अकेला ही दिखता हूँ किन्तु मुझे जो कार्य बिल्कुल ही गलत लगता है उसकी हां में हां करने की मूर्खता मैं नहीं कर सकता। अच्छे लोगों को चुनने की बात तो तब होनी चाहिये जब संविधान में संशोधन करके नेहरू अम्बेडकर के लोक नियुक्त तंत्र की प्रणाली को हटाकर गांधी प्रणीत लोक नियंत्रित तंत्र प्रणाली लागू हो जाये। मुझे अन्ना जी तक समझाते हैं कि मुझे वोट देना चाहिये। मैं यह मानता हूँ कि जब तक चुनाव में खड़ा होने वाला यह वचन न दे कि वह सुराज्य की जगह स्वराज्य का पक्षधर है तथा मैं संसद में जाकर लोकतंत्र को लोक स्वराज्य की दिशा में ले जाने का प्रयत्न करेगा तब तक मैं वोट देकर वर्तमान लोकतंत्र पर ठप्पा लगाने का पाप नहीं कर सकता। यदि अन्ना जी अरविन्द जी सरीखे लोग चुनाव में होंगे तो अलग बात है।

5 श्री रवीन्द्र सिंह तोमर, संवाद सरोवर, गुना, मध्यप्रदेश

प्रश्न – ज्ञान तत्व दो सौ संत्तावन के पृष्ठ पचीस से सताइस में लिखी बातों से मैं सहमत नहीं। सच्चाई यह है कि आर्थिक उदारवाद ने लगातार मशीनीकरण को बढाया है। रावर्ट क्लाइव ने भारत को परतंत्र बनाये रखने के लिये चांदी की गोलियों का उपयोग किया था। संविधान के अनुसार प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के अधिकारों का उपयोग करता है। हमारे प्रधानमंत्री व्यावहारिक राजनीति नहीं समझते। राजनीति में बढ़ता वंशवाद एक बड़ी समस्या है। इस पर बहस होनी चाहिये।

आपका ज्ञानतत्व अब तक साहित्य जगत में कोई स्थान नहीं पा सका है। इस पर भी विचार करियेगा।

उत्तर – आपका यह कहना सही है कि ज्ञान तत्व साहित्य जगत में स्थान नहीं पा सका है। इससे भी हटकर सच्चाई यह है कि ज्ञानतत्व वैचारिक पत्रिका है न कि साहित्यिक। साहित्य से ज्ञानतत्व का दूर दूर तक कोई संबंध नहीं। वैचारिक जगत में ज्ञानतत्व बहुत उंचा स्थान बना चुका है। ज्ञानतत्व की वैचारिक क्षमता राष्ट्रीय सीमाओं से भी आगे जा रही है। आपसे निवेदन है कि आप कुछ अच्छी वैचारिक पत्रिकाओं के नाम पते भेजने की कृपा करें।

आपका यह कथन बिल्कुल गलत है कि उदारवाद ने मशीनीकरण बढ़ाया। साम्यवाद उदारीकरण का धोर विरोधी है किन्तु उसने ही डीजल पेट्रोल बिजली गैस की मूल्य वृद्धि में सर्वाधिक अडंगे लगाये। भाजपा का चरित्र वैसा नहीं है। भाजपा तो सत्ता में होती है तो कृत्रिम उजा मूल्य वृद्धि का समर्थन करती है और विपक्ष में होतो है तो विरोध। किन्तु साम्यवादी तो नीतिगत विरोधी हैं। सच बात यह है कि भारत में मशीनीकरण उसी दिन से बढ़ना शुरू हुआ जबसे गांधी के हटते ही नेहरू एण्ड कम्पनी का समाजवाद आगे आया और उसने कृत्रिम उर्जा को सस्ता करना शुरू किया। उदारीकरण विरोधियों ने इक्यान्नबे तक भारत की अर्थ व्यवस्था को दिवालिया कर दिया था जिसे मनमोहन सिंह ने सम्हाला। दुबारा दो हजार चार से भारत की अर्थ व्यवस्था को बिगाड़ने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बंगाल ने। पहले साम्यवादियों ने लगातार रोड़े अटकाये और उसके बाद आई ममता बनर्जी ने तो सारी सीमाएँ ही तोड़ कर रख दीं। कौन नहीं जानता कि ममता ने केन्द्रीय रेल मंत्री दिनेश त्रिवेदी के साथ दुर्व्यवहार करके मनमोहन सरकार की अर्थनीति को एकदम ही पंगु कर दिया। रही सही कसर तत्कालीन वित्त मंत्री प्रणय मुखर्जी ने पूरी कर दी। यदि प्रणव बाबू को राष्ट्रपति बनाकर चिदम्बरमू को वित्त मंत्रालय देने की पहल नहीं होती तो भारत दुबारा इक्यान्नबे पूर्व की हालत में जा सकता था। चार चार आठ आठ आने की मूल्य वृद्धि के खिलाफ भारत बन्द कराने वाले अब पांच पांच दस दस रूपये की मूल्य वृद्धि पर चुप हैं। क्योंकि उन्हें यह अन्दाज हो गया है कि अब मनमोहन सिंह जी फिर से इक्यान्नबे की लाइन पर चल पड़े हैं मुझे लगता है कि यदि एक वर्ष तक कोई विशेष बात नहीं हुई और चुनाव आर्थिक मुद्दे पर ही लड़ा गया तो फिर से मनमोहनसिंह ही आगे रह सकते हैं क्योंकि भाजपा के पास प्रदेशों में तो नीतियां हैं किन्तु केन्द्र में उसकी कोई नीति नहीं है जबकि कांग्रेस के पास नीतियां तो हैं और केन्द्र में व्यक्ति भी हैं किन्तु प्रदेश बिल्कुल खाली हैं।

आपने प्रधानमंत्री के विषय में निरर्थक टिप्पणी की है। प्रधानमंत्री ने न कहीं वंशवाद को बढ़ावा दिया है न ही अव्यावहारिक राजनीति की है। आप ने प्रधानमंत्री के विषय में जो टिप्पणी की है उस संबंध में विस्तार से लिखें तो बहस संभव है।

6 श्री कल्पेश याग्निक, नेशनल एडीटर, दैनिक भास्कर ग्यारह मार्च

विचार—भारत का गृह मंत्रालय एक ऐसा प्रस्ताव ला रहा है जिसमें शारीरिक सबंध बनाने की उम्र अठारह से घटाकर सोलह कर दी जायेगी। गृहमंत्रालय का कहना है कि वह लडकियां को बचाना चाहती है इसलिये उम्र 16 करना चाहता है। किससे बचाना चाहता है? वह चिंतित है कि कुछ लडके लडकियां अपने माता पिता की इच्छा के विरूद्ध जीवन साथी चुन लेते हैं। विवाह के पूर्व उसमे संबंध स्थापित हो जाते है । ऐसे मे माता पिता उन पर यौन शोषण या दुष्कर्म के आरोप लगा देते है। अभी कानून ऐसा माना भी जाएगा। चूकि सहमति के साथ संबंध की उम्र 18 ही है। फिर पुलिस परेशान करेगी। ज्यादती करेगी। अत्याचार
यानीी माता पिता से बचाने के लिये घटाई जा रह है संबंधो की उम्र!
कानून मंत्रालय को लागु करने है ये कानून। वह एक कदम और आगे है। वह चाहता है यह उम्र 14 ही कर दी जाए। तर्क है नई पीढी बखूबी समझती है कि सहमति से संबंध क्या है और बलपूर्वक किया यौन अपराध क्या। यही नही कई महिला संगठन भी उम्र घटाने की बात कर चुके है। उसका हवाला भी दिया जा रहा है। टीन एज सेक्स का अपराधीकरण इससे रोका जा सकेगा यह कहा जा रहा है।
उधर महिला एंव बाल कल्याण मंत्रालय इसका विरोधी है। महिला सुरक्षा की जिम्मेदारी उसकी है। उनकी मंत्री कृष्णा तीरथ ने कहा है कि इससे कम उम्र की लडकियों का शोषण बढेगा । बच्चो को शिकार बनाने का निमंत्रण है ऐसा कदम । विशेषकर तब जबकि शादो की उम्र तो 18 वर्ष ही वैध है।

सरकारे जो चाहे तय कर देती है। किन्तु क्या वह बगैर किसी राष्ट्रीय बहस के हमारे बच्चो के नितांत निजी और परिवार समाज की संरचना से जुडे इतने संवेदनशील मामले को इतने हलके तरह से तय कर सकती है? किसने दिया उसे यह अधिकार?

एक वर्ष भी नही हुआ। जब संबंधो की उम्र 18 मंजूर की गई थी । चाइल्ड मैरिज प्रोजेक्शन एक्ट 1929 मे यह 18 हैं । प्रोटेक्शन आफ चाइल्ड फॉम सेक्सुअल आफेन्स 2012 मे यह 18 है। यहां तक कि इस अध्यादेश तक मे क्रिमिनल ला अर्डिनेंस 2013 मे भी 18 ही है तो अब अचानक 16 या 14 क्यो कर देंगे? क्या हम पहले नासमझ थे?

सरकार हमसे सारी बाते पूछे यह असंभव है किन्तु पूछनी ही होगी । विशेषकर ऐसे फैसले । भयावह हो सकते है ऐसे फैसले। छोटे उम्र की बच्चियां शादी से पहले गर्भवती होने लगेंगी कानूनन । गर्भपात होने लगेंगे—कानूनन। लडकियों की तस्करी जैसे पाप बढने लगेंगे। पकडे जाने पर काफी कुछ सामने लाया जाएगा —कानूनन। हमारे सामने स्पष्ट यह भी है कि जिन्हे संबंध बनाने है वे तो बना ही रहे है। रूकेंगे नहीं किन्तु रूक तो कुछ भी नही रही। जधन्य हत्याए। नृशंस दुष्कर्म । और कोई भी भयावह अपराध। तो क्या सभी मे उम्र घटा दे? सजा की उम्र भी घटा दे? धाराए ही घटा दे? हम ही न घट जाएं।

उत्तर – गृह मंत्रालय, कानून मंत्रालय और महिला मंत्रालय के बीच मदभेद मेरी समीक्षा का विषय नहीं। मैं तो आपके विचारों की समीक्षा तक सीमित रहूंगा। मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि सरकारों को बच्चों के नितान्त निजी जीवन के संबंध में किसी पकार के हस्तक्षेप से बचना चाहिये और यदि बहुत ही जरूरी हो तो व्यापक बहस या विचार मंथन अवश्य करना चाहिये। मैं तो बहुत लम्बे समय से आपके इस कथन का पक्षधर हूँ कि सहमत सेक्स एक व्यक्तिगत, पारिवारिक या सामाजिक विषय है और ऐसे मामलों में सरकारों को कोई कानूनी हस्तक्षेप तब तक नहीं करना चाहिये जब तक कोई अपराध न हो। सरकार ने विवाह की उम्र तय करके अनावश्यक हस्तक्षेप किया। इस तरह सरकार ने जो कुछ पूर्व में उम्र अठारह की थी वह भी गलत थी और अब जो सोलह कर रहे हैं वह भी गलत है। सहमत सेक्स की उम्र परिवार या समाज तय करेगा। किन्तु दूसरी लाइन लिखकर आपने या तो अपनी ना समझी प्रकट कर दी या नीयत। आप जानते हैं कि एक वर्ष पूर्व ही सहमत सेक्स की पूर्व प्रचलित उम्र को सोलह से बढ़ाकर अठारह किया गया। बिना किसी बहस के महिला बाल विकास को खुश करने के लिये यह फेर बदल हुआ। वास्तव में उम्र को सोलह से घटाकर चौदह करना चाहिये था किन्तु महिला बाल विकास का सिर्फ एक ही काम है कि महिला और पुरूष के बीच वर्ग निर्माण, वर्ग विद्वेष को वर्ग संघर्ष की दिशा देना। ये महिलाएँ भी जानती थीं कि उम्र बदलाव का यह कानून बनते ही भारत में बलात्कारों की बाढ़ आ जायेगी और उस बाढ़ के आधार पर महिला सशक्तिकरण की आवाज बुलन्द करना ज्यादा आसान होगा। परिणाम उनके अनुसार ही हुए जिनके खतरे भांपकर अन्य मंत्रालय सक्रिय हुए। आप एक वरिष्ट पत्रकार हैं किन्तु आपने यह प्रश्न कैसे उछाल दिया कि क्या हम सोलह को अठारह करत समय ना समझ थे? यदि ऐसा ना समझ सवाल आपने किया तो मैं भी जानना चाहता हूँ कि क्या हम इतने वर्षों से चला रहे सोलह वर्ष के समय ना समझ थे। सोलह से अठारह करने वालों को समझदार कहना और उसके पूर्व वालों की समझदारी पर प्रश्न खड़े करना ठीक नहीं। यदि अब एसा महसूस होता है कि सोलह से अठारह करना भूल थी तो कदम वापस करने में दिक्कत क्या है? आपने जघन्य हत्याएँ, नृशंस दुष्कर्म जैसे अपराधों को सहमत सेक्स जैसे गैर कानूनी कार्य से तुलना करके अपनी घोर अज्ञानता का परिचय दिया है। अपराध और गैर कानूनी का आप अन्तर भी

नहीं समझते यह आश्चर्य जनक है। अपने खेत का पेड़ बिना अनुमति काटना गैर कानूनी है अपराध नहीं जबकि दूसरे की जमीन का पेड़ काटकर ले जाना गैर कानूनी ही नहीं बल्कि अपराध भी है। अपराध रोकना सरकार का दायित्व है किन्तु विवाह की उम्र तय करना सरकार का अतिरिक्त कर्तव्य है, दायित्व नहीं। बलात्कार अपराध है और सरकार को रोकना ही होगा किन्तु सहमत सेक्स न कभी अपराध है न होगा। कानून देश काल परिस्थिति अनुसार इनको प्रोत्साहित निरूत्साहित करने के कानून बनाता हटाता रहता है।

7 श्री सिद्धार्थ शर्मा, राष्ट्रीय अध्यक्ष लोक स्वराज्य मंच

विचार –एक बार फिर आतंकवाद ने हैदराबाद को लपेट लिया। 21 फरवरी के दोहरे विस्फोटों ने फिर से साबित कर दिया कि भारत आतंकवादियो के लिये साफट टार्गेट है। मीडिया के खबरो के अनुसार एक बम उस स्थान से बरामद हुआ है। जहां कुछ वर्ष पूर्व ऐसा ही विस्फोट हुआ। हमले के तुरंत बाद राजनेताओ के बयान भविष्य के लिये स्पष्ट संकेत है। प्रधानमंत्री से लेकर गुजरात के मुख्यमंत्री भाजपा के करिश्माई नेता नरेन्द्रमोदी तक सभी ने संवेदनाएं व्यक्त की ं। इस बीच केन्द्रीय गृह मंत्री ने कहा की हमले की खुफिया पूर्व सूचना थी। प्रश्न है की पूर्वसूचना के बावजूद यह दुष्कृत्य सरजाम कैसे हुआ? देश की आतंरिक सुरक्षा व्यवस्था क्या कर रही थी? स्पष्ट है कि निरीह जनता बेचारी पीडा से कराह रही है और राज्य सत्ता ने उन्हे राम भरोसे छोड दिया है।

सवाल है कि जब देश के दोनो बडे राजनैतिक दल जनता को आश्वस्त करने की बजाय अपने पारब्ध पर छोड रहे है तो शासन व्यवस्था की आवश्यकता ही क्या है? भारत मे जहां पति एक लाख जन संख्या पर 135 पुलिस वाले तैनात है वही महज 13000 वी आई पी की सुरक्षा मे 45000 पुलिसवाले नियुक्त है। और सरकारी सूत्रो के अनुसार 22 प्रतिशत पुलिस पद रिक्त हे। दिल्ली मे पिछले वर्ष लगभग 341 करोड रूपये वी वी आई पी सुरक्षा पर खर्च किये गये जिसमे अधिकतम उन 376 व्यक्ति विशेष पर थे जिन्ह सुरक्षा और केन्द्रीय सुरक्षा सेवा दी गयी। 40 करोड तो अकेले राष्ट्रपति भवन की सुरक्षा मे खर्च किये गये गुजरात मे ऐसी सरक्षा के लिये 304 करोड रूपये खर्च किये उत्तर प्रदेश मे 120 करोड सबसे कम वी आई पी सुरक्षा पर खर्च 44 लाख सिक्किम मे किये गये।

इससे भी बडा आश्चर्य यह कि एक तरफ तो शासन के व्यवहार एंव बयानो से यह स्पष्ट है कि गिनती भर आतंकवादियो को नियंत्रित करना उसके बस का नहीं अगले ही पल वही शासन 120 करोड जनता मे सिगरेट हेलमेट वालविवाह दहेज बारबाला नियंत्रण आदि विषयो को नियंत्रित करने का ठेका जबरन अपने उपर लेन के लिये अगर जमीन आसमान एक करता है तो उसकी नीयत पर शक न किया जाए तो क्या किया जाए। बलात्कार चोरी डकैती अपहरण लूट हत्या आतंकवाद भ्रष्टाचार आदि असली समस्याएं जिस व्यवस्था से नहीं संभलती वह सामाजिक सुधार मे इतनी तत्परता क्यो दिखाती है।

सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हर कोइ अपनी अपनी क्षमता को प्राथमिकताओं के आधार पर ही नियोजित करता है। प्रश्न है कि भारत की जनता की प्राथमिकता क्या? सुरक्षा या समाज सुधार? सामाजिक न्याय हमारा अभीष्ट तो है पर सुरक्षा की कीमत पर नहीं क्योकि अगर बांस ही न रहे तो बांसुरी कहां बजेगी।

सन 2001 मे अमरीका पर अब तक का सबसे बडा आतंकी हमला हुआ। आश्चर्य है वह दोहराया नहीं जा सका। उलटे शासक ने उस हमले के सुत्रधार को हो बिल मे घुसकर साफ भी कर दिया। क्या अंतर है भारत और अमरीका मे। अमरीका ने 9/11 के बाद यह नीतिगत निर्णय ले लिया कि वह अपनी पूरी क्षमता पहले अपने नागरिको की सुरक्षा पर लगाएगा। उसके बाद अगर क्षमता बचे तो समाज सुधार मे । इसका प्रमाण है कि इन दस वर्षो के अंतराल मे दो दो अमरीकी राष्ट्रपतियों की प्रिय स्वास्थ सुधार योजना को भी वहां की सदनो ने निरस्त कर दिया।

भारत मे इसके ठीक उल्टा हो रहा है। एक तरफ तो शासन ने आतंकवाद निरोधी धारा टाडा निरस्त कर दिया, भ्रष्टाचार पर सशक्त लोकपाल विधेयक लाने मे आनाकानी कर रहा है। दूसरी तरफ समाज सुधार के नाम पर खाद्य आपूर्ति बिल सार्वजनिक स्थानो पर सिगरेट पर रोक जैसे विधेयक लाने मे तत्परता दिखाता है। इन्हे कौन समझाए कि मुर्गी को कैसे हलाल किया जाए। इससे मुर्गी को कोई अंतर नही पडता । जनता जीवित रहेगी। तब खाना सिगरेट आदि प्रश्न उठेंगे। शीघ्र ही मरने वालो के लिये ये किस काम के।

समय आ गया है कि भारत की राज्य व्यवस्था भी अपनी सीमित क्षमता कवल जनता को सुरक्षा एंव न्याय प्रदान करने मे लगाएं। समाज सुधार जैसी कृत्रिम मृगमरीचिका अगर अब लम्बे समय तक जनता को दिखाने का प्रयास जारी रहा तो अव्यवस्था भी बढेगी और असुरक्षा भी। माया या राम मे से शासन हम जनता को क्या दिलाएगा यह स्पष्ट करें ।

कार्यालयीन प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न–पिछले कुछ दिनों से आप ज्ञान तत्व में महिला सक्तिकरण के खिलाफ लागातार लिख रहे है। आप ए टु जेड न्युज चैनल पर भी ऐसी ही बात बोलते रहते है । आज सारे विश्व में महिला सशक्तिकरण के पक्ष में आवाजे मजबूत हो रही है। दुनिया में कही

ऐसी आवाज का विरोध नही हो रहा । भारत में भी सभी दलों कें लोग तो इस पक्ष में है ही किन्तु संन्त महात्मा तक ऐसी आवाज के पक्षधर हो गये है । मुस्लिम धर्म गुरु भी धीरे –धीरे स्वयं को सहमत कर रहे है। ऐसी हालत में आप अकेले ही अपनी बात को बार –बार कहे जा रहें है । आप स्पष्ट करे की आप महिला सशक्तिकरण के विरुद्व है क्या ? यदि हा तो कयों ?

उत्तर –मैं कही भी महिला सशक्तिकरण के विरुद्व नही हूॅ। मैं तो चाहता हूॅ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति समान रुप से सशक्त हो । जो महिला कम सशक्त होगी उसे अधिक सशक्त किया जाएगा तथा जो महिला अधिक सशक्त होगी उसे कमजोर किया जाएगा। कानुन के समक्ष महिला पुरुष का कोई भेद नही होगा। किसी वर्ग को विशेष अधिकार नही होंगे । यदि कोई समूह कमजोर होगा तो उसे विशेष सुविधाऍ दी जा सकती है किन्तु विशेष अधिकार नही। कानून की नजर में जो व्यक्ति अपराध करता है अर्थात सरकार के बनाये कानूनों को तोंडता है उसके अधिकार कम किये जायेगें तथा कानून का ठीक ठीक पालन करने वाले व्यक्ति को विशेष अधिकार दिये जायेगें। यह भेद भाव वर्ग के आधार पर न करके प्रत्येक व्यक्ति के आधार पर किया जाएगा । मैं नही समझता की आप मेरी इस घोषणा के खिलाफ क्यों हैं? आप मानते है कि महिलाओं में अपराध प्रवृत्ति नगण्य होती है। और पुरुषों में बहुत ज्यादा । तो यदि महिला और पुरुषों का भेद न करके सिर्फ अपराधियों पर ही रोक लगे तो महिलाओं को डर कैसा। जो अपराधी होगा वही दंण्डित होगा।

सामाजिक व्यवस्था में भारतीय परिवारों में पुरुष प्रधान व्यवस्था है जो समानता के सिद्वान्तों के विरुद्व है। यह अन्तर कही भी कानुन में नही है। यह भेंदभाव परिवार में है। लेकिन प्रत्येक महिला को परिवार बनाने न बनाने की स्वतंत्रता है। वह बालिग होने के बाद विवाह न करे या विवाह अपनी शर्तो पर करें तो कहॉ सामाजिक दबाव है? कोई महिला कम योग्य पुरुष के साथ जुड जावे या उसे अपने साथ बुलाकर नौकर समान रखने की शर्त रखे तो कहॉ बंधन है? बंधन तो तब है जब विवाह के पुर्व तो पुरुष प्रधान व्यवस्था कों स्वीकार करें और विवाह के बाद दस तरह का नाटक करे । उसे पूर्ण स्वतंत्र रहना है तो रहे ,वह पर्ण सशक्त भी रहे तो उसे कोई नही रोकता ।

महिला सशक्तिकरण का नाटक सिर्फ दो प्रतिशत आधुनिक महिलाए ही खडा करती है । इनमें भी वें आधो वे है जो अपने अपने पतियों की सलाह पर समाज की अधिकतम सुविधाऍ अपने ही परिवार में लूट कर लाना चाहती है। अन्य परिवारो की महिला भी बेरोजगार रहें और पुरुष भी तो इन्हें कोई कष्ट नही किन्तु ये महिलाए रोजगार प्राप्त पति के होते हुए भी अपने रोजगारो के लिये ब्लैकमैल करती रहती है । शेष आधी वे है जिन्हें न पारिवारिक अनुशासन चाहिए न सामाजिक । वे हमेशा आग के पास सटकर रहने को भी व्याकुल हैं और ब्लास्ट होने का खतरा भी नही उठाना चाहती । व्यक्ति परिवार और समाज की अपनी अपनी स्वतंत्रताए भी है और सीमाए भो । यदि आप पूण स्वतंत्रता के इच्छुक है तो आप दूसरो की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नही कर सकते । यदि आपको संतान चाहिए तो आपको अपनी स्वतंत्रता में कटौती भी करनी पड सकती है ।अन्यथा यदि आप अकेले ही संतान पैदा करने का कोई मार्ग खोज लें या निसंतान ही रह सके तो किसी को क्या आपत्ति है? यदि आप जुडना ही चाहती है और कोई व्यक्ति आपको वस्तु समझे या नौकरानी से अधिक न समझे तो जुड कर रहना क्यों आवश्यक है? न्यायालय तो ऐसे एकपक्षीय प्रचार से प्रभावित हो जाता है । राजनेंताओं को आपकी स्वतंत्रता से कुछ न कुछ सुविधा ही होती है । परिणाम होता है कि आप जंतर मंतर पर ऐसा नाटक करती है जैसे कि सारी महिलाओं का ही प्रतिनिधित्व आप करती है तथा राजनेता अपने स्वार्थ से तत्काल आपकी बात मान लेते है ।

आप किसी सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन कर रही है। यदि आपने कानून का तोडा है तो वहॉ आपको विशेषाधिकार क्यों चाहिए । पुलिस वाले ने बिना भेदभाव किये हर अपराधी को समान रुप से पीटा तो न्यायालय को महिलाओं के लिये अलग से चिंन्ता क्यों करनी चाहिए । महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त है। हर अपराधी के साथ समान व्यवहार होना चाहिए । न्यायपालिका भी इसी समाज का अंग हैं । वह भी अपना मुख्य काम छोंडकर इधर उधर कुछ करतें रहती है ।उसकें अपने मुकदमे तो वर्षो नही निपटते । छोटे –छोटे मुद्दे निपटाने में न्यायालय वर्षो घिसटता रहता है । चैदह वर्ष बाद किसी निर्दोष को निर्दोष सिद्व करके जेल से छोडते समय न्यायालय को ग्लानि नही होती उत्तर प्रदेश के एक अपराधी पर छत्तीस संगीन अपराध होते हुए भी वह जनामत पर क्यों हैं ऐसे प्रश्नों का उत्तर न्यायपालिका अपने अन्दर नही खोंजती ।किन्तु यदि कहीं आलोचना का कोई अवसर मिले तो न्यायालय स्वतःसंज्ञान की ‘ शक्ति का उपयोग करना शुरु कर देता हैं। न्यायालय प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति केलिऐ समय सीमा की बहुत बात करता है किन्तु अपनी समय सीमा का दोष भी दुसरो पर ही डालकर पाक साफ हो जाता है । विशेष कर तब और भी जब समाज में कोई वर्ग विशेष अधिकार का मुद्दा खडा करें ।

आपने विश्व भर में चल रहे महिला सशक्तिकरण हवा की बात उठाई हैं। यह सच है किन्तु वहॉ परिवार व्यवस्था के स्थान पर व्यक्ति सर्वाधिक महत्वपुर्ण हैं।भारत में व्यक्ति परिवार और समाज के अलग अलग अधिकार भी हैं और सीमाऍ भी । जो लोग पश्चिम का अनुकरण करना चाहें उन्हें छूट है किन्तु आपको दोनो तरंफ की सुविधा नही हो सकती कि आप जब चाहें तब पूर्ण स्वतंत्र हो जावे अन्यथा परिवार व्यवस्था का लाभ भी लेते रहें। किसी भी व्यवस्था के कुछ लाभ भी होते है तो कुछ

हानि भी ।यदि आप परिवार बनाते है तो आपको अनुशासन भी मानना ही होगा। यदि पश्चिम में ऐसा नही है तो हम उसे परिवार व्यवस्था के लाभ अनुभव करा सकते है। आवश्यक नही कि उनक विचार अन्तिम रुप से ही सत्य हों। फिर हम आपको जब परिवार व्यवस्था से जुडने के लिये बाध्य नही कर रहें तो आप अपनी स्वच्छंदता हम पर कैसें थोप सकती है। पश्चिम लगातार भारत की परिवार व्यवस्था को कमजोर करने की कोशिश कर रहा है। वह भारत की बन्द व्यवस्था को खुली व्यवस्था मे बदलना चाहता है। आप चाहे तो पश्चिम का अनुकरण करे। किन्तु अनेक खुला समाज समर्थक महिलाएं और कुछ राजनेता मिलकर तथा मीडिया को मिलाकर समाज पर अपनी व्यवस्था थोप नही सकते। अनेक पुरूष राजनेता तथा अनेक आधुनिक महिलाएं पारिवारिक सामाजिक अनुशासन को अपनी स्वतंत्र इच्छा पूर्ति मे बाधक मानते है जो मेरे विचार मे एक षडयंत्र है। यदि भारत के संत महात्मा समाज शास्त्र नही जानते तो विचार मंथन ही तय करेगा कि वे सही हैं या मै। सिर्फ मठ बना लेना ही सब कुछ नही होता । आपने भी जो लिखा है उसमें कही कोई तर्क नही दिया । आपने प्रचलित प्रचार को ही सत्य मान लिया जबकि मैं ऐसे असत्य प्रचार को चुनौती देने के ही काम मे लगा हू। आशा है कि आप नये परिपेक्ष्य में कुछ तर्क देने की कृपा करेंगें। आप स्वयं पिछले तीन चार माह से देख रहे होंगें कि सोलह दिसम्बर के आन्दोंलन के बाद सम्पूर्ण भारत में बलात्कारों की बाढ़ सी आ गई है। मैं लम्बे समय के कहता रहा हूं कि खुले समाज और बन्द समाज क लिये भिन्न–भिन्न परिभाषाएॅ नही की गई तो बलात्कारो की ऐसी बाढ आएगी कि रोकने के लिये सेनाए भी बुलानी पड़ सकती है। वही स्पष्ट दिख रहा है। सम्पूर्ण पुरुष वर्ग को फॉसी पर लटका देना भी समस्या का समाधान नही हैं। यह हमने दामिनी प्रकरण के बाद बलात्कारों में आई बाढ से देख लिया हैं। अब तो पॉच सात वर्ष की बच्चियॉ भी ऐसी घटना की शिकार बन रही हैं। आधुनिक महिलाओं का नाटक भी इसका समाधान नही हैं और नेताओं द्वारा उनकी स्वीकृति भी समाधान नही है। समाधान है व्यक्ति परिवार और समाज की इकाईगत स्वतंत्रता तथा इनकी एक आपसी व्यवहार की सीमाओं का सामाजिक विश्लेषण । दुर्भाग्य से यह प्रयत्न छोंडकर बाकी सब हो रहा है। सीधी सी बात है कि ‘ शराफत सशक्तिकरण अभियान चलना चाहिये किन्तु शराफत सशक्तिकरण को छोडकर बाकी सब सशक्तिकरण हो रहा है।